८ कर्म और उसका व्यापार

☐ डॉ० महेन्द्रसागर प्रचंडिया

समूह और समुदाय में कर्म के अनेक अर्थ-अभिप्राय प्रचलित हैं। कर्म-कारक, क्रिया तथा जीव के साथ बंधने वाले विशेष जाति के पुद्गल-स्कन्ध आदि कर्म के रूप कहे जा सकते हैं। कर्मकारक लोक-प्रसिद्ध भाषा-परिवार में प्रयुक्त रूप प्रसिद्ध है। क्रियाएं समवदान तथा अधःकर्म आदि के भेद से अनेक प्रकार की होती हैं। जीव के साथ बंधने वाले विशेष जाति के पुद्गल स्कन्ध रूप कर्म का जैन सिद्धान्त ही विशेष प्रकार से निरूपण करता है।

कर्म का मौलिक अर्थ तो क्रिया ही है। जीव, मन, वचन तथा काय के द्वारा कुछ न कुछ करता है, वह उसकी क्रिया या कर्म है और मन, वचन तथा काय ये तीन उसके द्वार हैं। सांसारिक आत्मा के इन तीन द्वारों की क्रियाओं से प्रतिक्षण सभी आत्म-प्रदेशों में कर्म होते रहते हैं। अनादि काल से जीव का कर्म के साथ सम्बन्ध चला आ रहा है। इन दोनों का पारस्परिक अस्तित्व स्वतः सिद्ध है।

मूलतः कर्म को दो भागों में बाँटा गया है—द्रव्य कर्म और भाव कर्म। पुद्गल के कर्मकुल को द्रव्यकर्म कहते हैं और द्रव्यकर्म के निमित्त से जो आत्मा के राग-द्वेष, अज्ञान आदि भाव होते हैं, वे वस्तुतः भावकर्म कहलाते हैं। द्रव्य और भाव भेद से जो आत्मा को परतंत्र करता है, दुःख देता है, तथा संसार-चक्र में चक्रमण कराता है वह समवेत रूप में कर्म कहलाता है।

अनन्त काल से कर्म अनन्त हैं। कर्मों का एक कुल होता है। घातिया और अघातिया भेद से उन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। ये शब्द भी अपना पारिभाषिक अर्थ रखते हैं। जीव के गुणों का पूर्णतः घात करने वाले कर्म घातिया कर्म कहलाते हैं और जिनके द्वारा जीव-गुणों का पूर्णतः घात नहीं हो पाता, उन्हें अघातिया कर्म कहा जाता है। घातिया कर्म—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय तथा अन्तराय और अघातिया कर्म—आयु, नाम, गोत्र तथा वेदनीय मिलकर आठ प्रकार की कर्म जातियाँ बनाते हैं। अब यहाँ प्रत्येक कर्म की प्रकृति के विषय में संक्षेप में चर्चा करना आवश्यक है।

आत्मा अनन्त ज्ञान रूप है। उसके ज्ञान गुण को प्रच्छन्न करनेवाला कर्म ज्ञानावरण कर्म कहलाता है। इसी प्रकार उसके दर्शन गुण को प्रच्छन्न

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

करने वाला कर्म दर्शनावरण कर्म कहलाता है। मोहनीय कर्म के जाग्रत होने से जीव अपने स्वरूप को विस्मृत कर अन्य को अपना समझने लगता है। अन्तराय का शाब्दिक अर्थ है विघ्न। जिस कर्म के द्वारा दान, लाभ, व्यापार में विघ्न उत्पन्न होता है, उसे अन्तराय कर्म कहा जाता है। नरक, तिर्यंच, मनुष्य तथा देव विषयक विविध योनियां-आकार में जीव को घेरनेवाला, रोकनेवाला कर्म वस्तुतः आयु कर्म कहलाता है। नाम कर्म के द्वारा शरीर और उसके विविध मुखी अवयवों की संरचना सम्पन्न होती है। जीव ऊँच तथा नीच कुल में जन्म लेता है, उसे गोत्र कर्म कहते हैं। जिसके द्वारा आत्मा को सुख-दुःख का अनुभव होता है, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं।

आत्मिक गुणों में कर्म का कोई स्थान नहीं है। अज्ञानता से कर्म आत्म-गुणों को प्रच्छन्न करता है। आत्म-गुणों को आकर्षित और प्रभावित करने के लिए कर्म-कुल जिस मार्ग को अपनाता है, उसे आस्रव द्वार कहा जाता है। आस्रव भी एक दार्शनिक तथा पारिभाषिक शब्द है। इसके अर्थ होते हैं कर्मों के आने का द्वार। कर्म-संचार वस्तुतः आस्रव कहलाता है। पाप और पुण्य की दृष्टि से आस्रव को भी दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। यथा—

१–पुण्यास्रव
२–पापास्रव।

जिनेन्द्र भक्ति, जीवदया आदि शुभ रूप कर्म-क्रिया पुण्यास्रव कहलाती है जबकि जीव हिंसा, झूठ बोलना आदि कर्म-क्रिया पापास्रव होती है। इससे इसे शुभ और अशुभ भी कहा जाता है। अब यहां इन आठ कर्मों के आस्रव रूप को संक्षेप में प्रस्तुत करेंगे।

आस्रव मार्ग वस्तुतः बहुमुखी होता है। ज्ञान-केन्द्र तक पहुँचने के लिए आस्रव द्वार दशों-दिशाओं से संचार हेतु सर्वदा खुला रहता है। आस्रव मार्ग को बड़ी ही सावधानीपूर्वक जानना और पहिचानना आवश्यक है। ज्ञान और ज्ञानी से ईर्ष्या करना, ज्ञान-साधनों में विघ्न उत्पन्न करना, अपने ज्ञान को प्रच्छन्न करना तथा दूसरों को उससे अवगत न होने देना, गुरु का नाम छिपाना, ज्ञान का गर्व करना इत्यादिक कर्म-क्रियाएँ ज्ञानावरण कर्म का आस्रव कहलाती हैं।

जिनेन्द्र अथवा अर्हत् भगवान के दर्शनों में विघ्न डालना, किसी की आँख फोड़ना, दिन में सोना, मुनिजनों को देखकर मन में ग्लानि करना तथा अपनी दृष्टि का अभिमान करना इत्यादिक कर्म-क्रियाओं से दर्शनावरण कर्म का आस्रव प्रशस्त होता है।

अपने को तथा दूसरों को दुःख उत्पन्न करना, शोक करना, रोना, विलाप करना, जीव बध करना इत्यादिक कार्यों से वेदनीय कर्म का आस्रव होता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इसके साथ ही जीव दया करना, दान करना, संयम पालना, वात्सल्य भाव करना, मुनिजनों की वैय्यावृत्ति (सेवा सूश्रुषा) करना आदि से साता वेदनीय कर्म का आस्रव होता है।

मोहनीय कर्म का दो तरह से आस्रव होता है—दर्शन और चारित्र। दर्शन मोहनीय कर्म-आस्रव हेतु सच्चे देव, शास्त्र गुरु तज्जन्य धर्म में दोष लगाना होता है और कषायों—क्रोध, मान, माया तथा लोभ की तीव्रता रखना, चारित्र में दोष लगाना तथा मलिन भाव करना चारित्र मोहनीय कर्म का आस्रव होता है।

आयु कर्म का सीधा सम्बन्ध चतुर्गतियों में आगत जीव से होता है। बहुत आरम्भ एवं परिग्रह करने से नरकायु का आस्रव होता है। मायाचारी (मन से कुछ, वाणी से कुछ और करनी से कुछ और) से तिर्यंचगति का आयु आस्रव होता है। थोड़ा आरम्भ तथा परिग्रह से मनुष्यायु का आस्रव और सम्यक्त्व व्रत पालन, देश संयम, बालतप आदि से देव आयु का आस्रव होता है।

नाम कर्म शुभ और अशुभ दृष्टि से दो प्रकार से आस्रव होता है। मन, वचन, काय को सरल रखना, धर्मात्मा से विसंवाद नहीं करना, षोडश कारण भावना आदि से शुभ नाम कर्म का आस्रव होता है और कुटिल भाव, झगड़ा-कलह आदि से अशुभ नाम कर्म का आस्रव होता है।

नीच और ऊँच भेद से गोत्र कर्म का आस्रव दो प्रकार का होता है। परनिन्दा, स्वप्रशंसा करना, पर-गुणों को छिपाना और मिथ्या गुणों का बखान करना आदि से नीच गोत्र का आस्रव होता है, जबकि पर-प्रशंसा, अपनी निन्दा, पर-दोषों को ढकना और अपने दोषों को प्रकट करना, गुरुओं के प्रति नम्र वृत्ति रखना, विनय करना आदि से उच्च गोत्र कर्म का आस्रव होता है।

दान-दातार को रोकना, आश्रितों को धर्म साधन न करने देना, देव-दर्शन, मंदिर के द्रव्य को हड़पना, दूसरों की भोगादि वस्तु या शक्ति में विघ्न डालना आदि से वस्तुतः अन्तराय कर्म का आस्रव होता है।

इस प्रकार कर्म और उसके व्यापार परक स्थिति का संक्षेप में यहाँ विश्लेषण किया गया है। इन सभी कारणों से आए हुए कर्म पुद्गल-परमाणु आत्मा के साथ एक रूप हो जाते हैं, उसी का नाम बंध है। तीव्र-मंद आदि भावों से होने वाला आस्रव योग और कषाय आदि के निमित्त से १०८ भेद रूप भी माना जाता है। मन, वचन तथा काय समारम्भ अर्थात् हिंसादि करने का प्रयत्न अथवा संकल्प। सारंभ अर्थात् हिंसादि करने के साधन जुटाना, आरम्भ अर्थात हिंसादि पाप शुरू करने देना, कृत अर्थात् स्वयं करना, कारित अर्थात्

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरों से कराना, अनुमोदना अर्थात् करते हुए दूसरों को अनुमति देना तथा कषाय अर्थात् क्रोध, मान माया तथा लोभ तथा तीव्र-मंद आदि भावों से यह एक सौ आठ भेद रूप भी माना जाता है। अर्थात् मनवचनकाया-३ × समारम्भादि-३ × कृतकारित-३ × क्रोधादिकषाय-४ = १०८।

इन कारणों से आए हुए कर्म पुद्गल परमाणु आत्मा के साथ एकमेव हो जाने से बंध तत्त्व का रूप ग्रहण हो जाता है। कर्म और उसके व्यापार विषयक संक्षेप में चर्चा करने से ज्ञात होता है कि कर्म एक महान शक्ति है। विधि, स्रष्टा, विधाता, दैव, पुराकृत कर्म और ईश्वर ये सब कर्म के पर्याय हैं। कर्म:बंध संसार का भ्रमण का कारण है। कर्म क्षय कर अर्थात् कर्म-मुक्ति होना वस्तुतः मोक्ष को प्राप्त करना है।

कर्म के दोहे

ढाई अक्षर नाम के, अंतर तू पहचान।
एक देत है नर्क गति, दूजा शिव सुखधाम॥

को सुख को दुःख देत है, देत कर्म झकझोर।
उलझे-सुलझे आपही, ध्वजा पवन के जोर॥

कर्म कमण्डलु कर लिये, तुलसी जहँ तहँ जात।
सागर सरिता कूप जल, अधिक न बूँद लगात॥

राम किसी को मारे नहीं, मारे सो नहीं राम।
आपो आप मर जायेगा, कर-कर खोटा काम॥

आड़ी न आवे मायड़ी, आड़ो न आवे बाप।
क्रिया कर्म जो भोगवे, भुगते आपो आप॥

प्लेटफार्म पर हैं खड़े, सरखे लोग हजार।
किन्तु मिलेगी क्लास तो, टिकटों के अनुसार॥

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org